JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारत में मृत्युदंड का विश्लेषणात्मक अध्ययन

[1]Dushyant Kumar Nandwal, [2]Prof. Dr. Mahasweta Sen Gupta

[1]LL.M 1st Semester, Sage University, Indore, M.P., India

[2]Associate Prof. Dr. Mahasweta Sen Gupta, Sage University, Indore M-P

Abstract : दण्ड व्यवस्था किसी भी विधि-शासित समाज की आधारशिला मानी जाती है, जिसका उद्देश्य न केवल अपराधी को दण्डित करना होता है, बल्कि समाज में विधि एवं व्यवस्था बनाए रखना तथा भावी अपराधों की रोकथाम करना भी होता है। दण्ड के विभिन्न सिद्धांतों में *निवारण सिद्धांत* को विशेष महत्व प्राप्त है, क्योंकि यह सिद्धांत दण्ड के भय के माध्यम से अपराधियों एवं संभावित अपराधियों को अपराध करने से रोकने की परिकल्पना करता है। भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली में मृत्युदण्ड को दण्ड का सर्वाधिक कठोर एवं अंतिम रूप माना गया है, जिसे केवल अत्यन्त गंभीर एवं जघन्य अपराधों के लिए ही निर्धारित किया गया है। तथापि, आधुनिक समय में मृत्युदण्ड की उपयोगिता, नैतिकता एवं प्रभावशीलता को लेकर विधिक, सामाजिक तथा मानवाधिकार स्तर पर व्यापक बहस विद्यमान है। वर्तमान अध्ययन की आवश्यकता इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि क्या मृत्युदण्ड वास्तव में निवारण सिद्धांत के उद्देश्यों की पूर्ति करता है अथवा यह मात्र दण्ड की कठोरता तक सीमित रह गया है। भारतीय संदर्भ में दीर्घकालिक न्यायिक प्रक्रिया, दण्ड के निष्पादन में विलंब तथा समान प्रकृति के अपराधों में दण्ड निर्धारण की असमानता जैसे तत्व मृत्युदण्ड की निवारक क्षमता पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं। इसी पृष्ठभूमि में यह शोध मृत्युदण्ड और निवारण सिद्धांत के मध्य संबंध का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इस शोध का प्रमुख उद्देश्य निवारण सिद्धांत की सैद्धांतिक अवधारणा को समझना, भारतीय विधिक ढांचे के अंतर्गत मृत्युदण्ड की भूमिका का मूल्यांकन करना तथा न्यायपालिका द्वारा विकसित *दुर्लभतम से दुर्लभ* सिद्धांत की प्रभावशीलता का परीक्षण करना है। यह अध्ययन मुख्यतः सैद्धांतिक एवं डॉक्ट्रिनल प्रकृति का है, जिसमें विधिक प्रावधानों, न्यायिक निर्णयों, विधि आयोग की रिपोर्टों तथा विद्वानों के विचारों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष यह संकेत देते हैं कि केवल दण्ड की कठोरता अपराधों की प्रभावी रोकथाम के लिए पर्याप्त नहीं है। निवारण सिद्धांत की वास्तविक सफलता दण्ड की निश्चितता, शीघ्रता तथा समान अनुप्रयोग पर निर्भर करती है। अंततः यह निष्कर्ष निकाला गया है कि भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली में मृत्युदण्ड की निवारक भूमिका सीमित प्रतीत होती है और दण्ड नीति में संतुलित, मानवाधिकार-सम्मत एवं सुधारात्मक दृष्टिकोण अपनाए जाने की आवश्यकता है।

IndexTerms **- निवारण सिद्धांत, मृत्युदण्ड, दण्ड नीति**

I. INTRODUCTION

दण्ड की अवधारणा मानव समाज के विकास के साथ निरंतर विकसित होती रही है। किसी भी संगठित एवं विधि-शासित समाज में दण्ड व्यवस्था का मूल उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था बनाए रखना, विधि के शासन को सुदृढ़ करना तथा नागरिकों के जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति की सुरक्षा सुनिश्चित करना होता है। अपराध केवल किसी एक व्यक्ति के विरुद्ध किया गया कृत्य नहीं होता, बल्कि वह संपूर्ण समाज की शांति, सुरक्षा और नैतिक व्यवस्था को प्रभावित करता है। इसी कारण राज्य अपराध को नियंत्रित करने एवं सामाजिक संतुलन बनाए रखने के लिए दण्ड प्रदान करने का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखता है। दण्ड का उद्देश्य केवल प्रतिशोध तक सीमित न होकर अपराध की पुनरावृत्ति को रोकना और समाज में विधि के प्रति सम्मान उत्पन्न करना भी है। दण्ड व्यवस्था के औचित्य को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न दण्ड सिद्धांत विकसित किए गए हैं, जिनमें प्रतिशोधात्मक सिद्धांत, सुधारात्मक सिद्धांत, प्रतिकारात्मक सिद्धांत तथा निवारण सिद्धांत प्रमुख हैं। प्रतिशोधात्मक सिद्धांत अपराधी को उसके कृत्य के प्रतिफल के रूप में दण्ड देने पर बल देता है, जबकि सुधारात्मक सिद्धांत अपराधी के पुनर्वास और सामाजिक पुनःस्थापन पर केंद्रित होता है। इसके विपरीत, निवारण सिद्धांत का उद्देश्य दण्ड के भय के माध्यम से न केवल अपराधी, बल्कि समाज के अन्य सदस्यों को भी अपराध करने से रोकना है। यह सिद्धांत इस धारणा पर आधारित है कि दण्ड यदि कठोर, निश्चित एवं शीघ्र हो, तो वह अपराध की प्रवृत्ति को नियंत्रित करने में प्रभावी सिद्ध हो सकता है। भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली में मृत्युदण्ड को दण्ड का सर्वाधिक कठोर एवं अंतिम रूप माना गया है। इसे केवल अत्यन्त गंभीर, जघन्य और समाज की सामूहिक चेतना को झकझोरने वाले अपराधों तक सीमित रखा गया है। तथापि, मृत्युदण्ड की अवधारणा को लेकर विधिक, नैतिक और मानवाधिकार स्तर पर निरंतर विवाद बना हुआ है। एक ओर इसे अपराध नियंत्रण का प्रभावी साधन माना जाता है, वहीं दूसरी ओर इसे जीवन के अधिकार, मानवीय गरिमा और न्यायिक त्रुटियों की संभावना के दृष्टिकोण से आलोचना का सामना करना पड़ता है। वर्तमान समय में यह विषय विशेष रूप से प्रासंगिक हो गया है, क्योंकि भारतीय न्यायपालिका ने *दुर्लभतम से दुर्लभ* सिद्धांत के माध्यम से मृत्युदण्ड के प्रयोग को सीमित करने का प्रयास किया है तथा विधि आयोग की विभिन्न रिपोर्टों ने भी इसकी निवारक उपयोगिता पर प्रश्न उठाए हैं। साथ ही, न्यायिक प्रक्रिया में विलंब, दण्ड के निष्पादन में असमानता और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मृत्युदण्ड उन्मूलन की प्रवृत्ति ने इस विषय को और अधिक जटिल बना दिया है। इसी पृष्ठभूमि में समस्या कथन यह उभरकर सामने आता है कि क्या मृत्युदण्ड वास्तव में निवारण सिद्धांत के उद्देश्यों की पूर्ति करने में सक्षम है अथवा इसकी प्रभावशीलता केवल सैद्धांतिक स्तर तक सीमित रह गई है। क्या दण्ड की अत्यधिक कठोरता ही अपराध रोकने का प्रभावी साधन है, या इसके लिए दण्ड की निश्चितता, शीघ्रता और समान अनुप्रयोग अधिक महत्वपूर्ण हैं—इन प्रश्नों का उत्तर खोजने का प्रयास ही प्रस्तुत शोध का केंद्रीय उद्देश्य है।

II. शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य मृत्युदण्ड और निवारण सिद्धांत के मध्य संबंध का सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक स्तर पर विश्लेषण करना है, जिससे यह समझा जा सके कि भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली में मृत्युदण्ड अपराध नियंत्रण के साधन के रूप में किस सीमा तक प्रभावी है। इस अध्ययन के मुख्य एवं विशिष्ट उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. निवारण सिद्धांत की अवधारणा, उसके दार्शनिक आधार तथा प्रमुख तत्वों (दण्ड की कठोरता, निश्चितता एवं शीघ्रता) का अध्ययन करना।
2. भारतीय विधिक व्यवस्था के अंतर्गत मृत्युदण्ड की अवधारणा, स्वरूप एवं उद्देश्य का समालोचनात्मक मूल्यांकन करना।
3. यह परीक्षण करना कि क्या मृत्युदण्ड निवारण सिद्धांत के उद्देश्यों की पूर्ति करने में प्रभावी सिद्ध होता है।
4. मृत्युदण्ड से संबंधित भारतीय न्यायपालिका की दृष्टि का विश्लेषण करना, विशेष रूप से *दुर्लभतम से दुर्लभ* सिद्धांत के संदर्भ में।
5. विधि आयोग की रिपोर्टों तथा विद्वानों के मतों के आलोक में मृत्युदण्ड की उपयोगिता एवं सीमाओं का अध्ययन करना।

III. शोध कार्यप्रणाली

प्रस्तुत शोध पूर्णतः डॉक्ट्रिनल एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है, जिसमें किसी भी प्रकार के प्राथमिक अथवा अनुभवजन्य डेटा का संग्रह नहीं किया गया है। यह अध्ययन विधिक सिद्धांतों, विधायी प्रावधानों, न्यायिक निर्णयों तथा विद्वानों के विचारों के समालोचनात्मक विश्लेषण पर आधारित है। शोध का उद्देश्य निवारण सिद्धांत और मृत्युदण्ड के मध्य सैद्धांतिक एवं विधिक संबंध को स्पष्ट करना है, न कि सांख्यिकीय निष्कर्ष प्रस्तुत करना।

इस शोध में अध्ययन की विधि मुख्यतः ग्रंथालय-आधारित (Library-based Research) है। इसमें मृत्युदण्ड से संबंधित विधिक ढांचे, संवैधानिक वैधता, न्यायिक मानदंडों तथा निवारण सिद्धांत की अवधारणा का तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण के माध्यम से यह मूल्यांकन किया गया है कि मृत्युदण्ड भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली में निवारण सिद्धांत के उद्देश्यों की पूर्ति किस सीमा तक करता है।

शोध में प्रयुक्त स्रोतों को द्वितीयक एवं विधिक स्रोतों तक सीमित रखा गया है। इनमें भारतीय दण्ड संहिता, भारतीय न्याय संहिता, संविधान के प्रासंगिक अनुच्छेद, सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय, विधि आयोग की रिपोर्टें, विधि विषयक पुस्तकें, शोध लेख, जर्नल तथा प्रामाणिक ऑनलाइन संसाधन सम्मिलित हैं। इन स्रोतों के माध्यम से विषय का बहुआयामी विश्लेषण किया गया है।

जहाँ तक शोध की सीमा और सीमाओं का प्रश्न है, यह अध्ययन केवल भारतीय विधिक परिप्रेक्ष्य तक सीमित है तथा इसमें किसी प्रकार का क्षेत्रीय सर्वेक्षण, साक्षात्कार या सांख्यिकीय विश्लेषण सम्मिलित नहीं किया गया है। अध्ययन का केंद्रबिंदु मृत्युदण्ड की निवारक प्रभावशीलता का सैद्धांतिक एवं न्यायिक मूल्यांकन है।

IV. साहित्य समीक्षा

मृत्युदण्ड और निवारण सिद्धांत से संबंधित साहित्य का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि यह विषय विधिक, दार्शनिक तथा मानवाधिकार विमर्श के केंद्र में रहा है। विभिन्न विद्वानों, विधि आयोगों और अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं ने समय-समय पर इस प्रश्न का विश्लेषण किया है कि क्या मृत्युदण्ड वास्तव में अपराधों की रोकथाम में प्रभावी भूमिका निभाता है। उपलब्ध साहित्य से यह भी परिलक्षित होता है कि निवारण सिद्धांत की सफलता केवल दण्ड की कठोरता पर नहीं, बल्कि उसके निश्चित और शीघ्र अनुप्रयोग पर निर्भर करती है। इस संदर्भ में प्रमुख विद्वानों और आधिकारिक रिपोर्टों के योगदान का संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है—

Cesare Beccaria (1764) ने अपनी प्रसिद्ध कृति *On Crimes and Punishments* में दण्ड के निवारक उद्देश्य पर विस्तार से चर्चा की। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि दण्ड की कठोरता की अपेक्षा उसकी निश्चितता और शीघ्रता अधिक प्रभावी निवारक तत्व हैं। बेक्कारिया के अनुसार यदि दण्ड का अनुप्रयोग अनिश्चित या अत्यधिक विलंबित हो, तो चाहे वह कितना ही कठोर क्यों न हो, वह अपराध रोकने में अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकता। उनके विचारों ने आधुनिक दण्ड सिद्धांतों की नींव रखी और मृत्युदण्ड की उपयोगिता पर गंभीर प्रश्न उठाए।

Jeremy Bentham (1789) ने उपयोगितावादी दृष्टिकोण से दण्ड व्यवस्था का विश्लेषण किया। अपने कार्य *An Introduction to the Principles of Morals and Legislation* में उन्होंने यह तर्क दिया कि दण्ड का उद्देश्य अधिकतम सामाजिक लाभ सुनिश्चित करना होना चाहिए। बेंथम के अनुसार यदि कोई दण्ड समाज को वास्तविक लाभ नहीं पहुँचाता या अपराध में कमी लाने में प्रभावी सिद्ध नहीं होता, तो उसका औचित्य संदिग्ध हो जाता है। इस दृष्टि से मृत्युदण्ड की निवारक क्षमता पर उन्होंने परोक्ष रूप से संदेह व्यक्त किया।

Law Commission of India (2015) की 262वीं रिपोर्ट *The Death Penalty* भारतीय संदर्भ में मृत्युदण्ड पर सबसे महत्वपूर्ण आधिकारिक अध्ययन मानी जाती है। आयोग ने विस्तृत विश्लेषण के उपरांत यह निष्कर्ष निकाला कि मृत्युदण्ड आजीवन कारावास की तुलना में अपराध रोकने में अधिक प्रभावी सिद्ध नहीं हुआ है। रिपोर्ट में यह भी स्वीकार किया गया कि निवारण सिद्धांत के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दण्ड की निश्चितता और शीघ्रता अधिक महत्वपूर्ण है, न कि उसकी अत्यधिक कठोरता।

Amnesty International (विभिन्न वार्षिक रिपोर्टें**)** ने वैश्विक स्तर पर मृत्युदण्ड की आलोचना करते हुए इसे मानवाधिकारों के प्रतिकूल बताया है। संगठन के अध्ययनों में यह निष्कर्ष सामने आया है कि मृत्युदण्ड और अपराध दर में कमी के मध्य कोई स्पष्ट कारणात्मक संबंध स्थापित नहीं किया जा सका है। एमनेस्टी इंटरनेशनल के अनुसार मृत्युदण्ड जीवन के अधिकार और मानवीय गरिमा का उल्लंघन करता है, इसलिए इसे निवारण के प्रभावी साधन के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

Roger Hood **(2002)** ने अपनी पुस्तक *The Death Penalty: A Worldwide Perspective* में मृत्युदण्ड का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। हूड के अनुसार विभिन्न देशों के अनुभव यह दर्शाते हैं कि मृत्युदण्ड के उन्मूलन के बाद भी अपराध दर में कोई उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई है। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि मृत्युदण्ड की निवारक प्रभावशीलता का कोई ठोस अनुभवजन्य प्रमाण उपलब्ध नहीं है, जिससे इसके औचित्य पर गंभीर प्रश्न खड़े होते हैं।

उपरोक्त साहित्य के समग्र अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि मृत्युदण्ड पर पर्याप्त विधिक, दार्शनिक और मानवाधिकार आधारित अध्ययन उपलब्ध हैं। तथापि, अधिकांश शोध या तो मृत्युदण्ड की नैतिकता और संवैधानिक वैधता पर केंद्रित हैं अथवा इसके अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य का विश्लेषण करते हैं। निवारण सिद्धांत के विशिष्ट संदर्भ में**,** विशेषकर भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली के व्यावहारिक संचालन के आलोक में मृत्युदण्ड की प्रभावशीलता का समग्र और केंद्रित अध्ययन अपेक्षाकृत सीमित है।

V. निवारण सिद्धांत : सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

निवारण सिद्धांत दण्ड सिद्धांतों में एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है, जिसका मूल उद्देश्य दण्ड के भय के माध्यम से अपराधों की रोकथाम करना है। यह सिद्धांत इस आधारभूत धारणा पर आधारित है कि मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है, जो अपने प्रत्येक कार्य के संभावित लाभ और हानि का आकलन करता है। यदि किसी अपराध के परिणामस्वरूप कठोर दण्ड का भय व्यक्ति के मन में विद्यमान हो, तो वह अपराध करने से पूर्व उसके दुष्परिणामों पर गंभीरता से विचार करता है और अपराध से दूर रहने का प्रयास करता है (Beccaria, 1764)। इस प्रकार निवारण सिद्धांत केवल अपराधी को दण्डित करने तक सीमित नहीं रहता, बल्कि समाज के अन्य सदस्यों को भी अपराध करने से रोकने का कार्य करता है। निवारण सिद्धांत के तीन प्रमुख तत्व माने जाते हैं, जिनमें दण्ड की कठोरता, दण्ड की निश्चितता और दण्ड की शीघ्रता सम्मिलित हैं। दण्ड की कठोरता से आशय अपराध के लिए निर्धारित दण्ड की गंभीरता से है, जो अपराध की प्रकृति और उसकी सामाजिक हानि के अनुरूप होनी चाहिए। दण्ड की निश्चितता यह सुनिश्चित करती है कि अपराध करने पर दण्ड अवश्य मिलेगा और अपराधी दण्ड से बच नहीं पाएगा। दण्ड की शीघ्रता का तात्पर्य दण्ड के त्वरित निष्पादन से है, जिससे अपराध और दण्ड के बीच समयांतराल न्यूनतम रहे। विद्वानों का मत है कि इन तीनों तत्वों का संतुलित और प्रभावी अनुप्रयोग ही निवारण सिद्धांत को सफल बनाता है (Bentham, 1789)। शास्त्रीय दृष्टिकोण में निवारण सिद्धांत को अपराध नियंत्रण का एक प्रभावी साधन माना गया है। शास्त्रीय विचारकों का विश्वास था कि कठोर और त्वरित दण्ड अपराध की प्रवृत्ति को नियंत्रित कर सकता है। तथापि, आधुनिक विचारधाराओं ने इस सिद्धांत की सीमाओं को उजागर किया है। आधुनिक विद्वानों का मत है कि केवल कठोर दण्ड अपने आप में अपराध रोकने में सक्षम नहीं होता, जब तक कि दण्ड का अनुप्रयोग निश्चित और शीघ्र न हो। यदि दण्ड प्रक्रिया लंबी, जटिल और अनिश्चित हो, तो दण्ड का भय कमजोर पड़ जाता है और निवारण सिद्धांत अपना प्रभाव खो देता है (Hood, 2002)।

VI. भारत में मृत्युदण्ड का विधिक ढांचा

भारत में मृत्युदण्ड का विधिक आधार दण्ड संहिताओं में निहित है, जिनमें कुछ विशिष्ट और अत्यंत गंभीर अपराधों के लिए मृत्युदण्ड का प्रावधान किया गया है। भारतीय दण्ड संहिता, 1860 तथा नवीन भारतीय न्याय संहिता, 2023 के अंतर्गत हत्या, राज्य के विरुद्ध युद्ध छेड़ना तथा कुछ अन्य जघन्य अपराधों के लिए मृत्युदण्ड निर्धारित किया गया है। विधायिका ने मृत्युदण्ड को सामान्य दण्ड के रूप में नहीं, बल्कि अपवादस्वरूप दण्ड के रूप में स्वीकार किया है, जिसका प्रयोग केवल अत्यंत असाधारण परिस्थितियों में ही किया जाना अपेक्षित है। संवैधानिक दृष्टि से मृत्युदण्ड को जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार के संदर्भ में समय-समय पर चुनौती दी गई है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21 प्रत्येक व्यक्ति को जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है, किंतु साथ ही यह भी स्वीकार करता है कि विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार इस अधिकार को सीमित किया जा सकता है। न्यायपालिका ने यह स्पष्ट किया है कि यदि मृत्युदण्ड विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार दिया गया हो, तो वह संविधान के विरुद्ध नहीं माना जाएगा (Bachan Singh v. State of Punjab, 1980)। मानवाधिकार दृष्टिकोण से मृत्युदण्ड एक अत्यंत विवादास्पद विषय बना हुआ है। मानवाधिकार विद्वानों और संगठनों का तर्क है कि मृत्युदण्ड जीवन के अधिकार का स्थायी और अपरिवर्तनीय हनन करता है, जिसे किसी भी परिस्थिति में उचित नहीं ठहराया जा सकता। इस कारण भारत में मृत्युदण्ड का विधिक ढांचा निरंतर विधिक और नैतिक विमर्श के केंद्र में बना हुआ है (Law Commission of India, 2015)।

VII. न्यायिक दृष्टिकोण एवं प्रमुख निर्णय

भारतीय न्यायपालिका ने मृत्युदण्ड के प्रयोग को नियंत्रित और सीमित करने के उद्देश्य से दुर्लभतम से दुर्लभ सिद्धांत का विकास किया है। इस सिद्धांत के अनुसार मृत्युदण्ड केवल उन्हीं मामलों में दिया जाना चाहिए, जहाँ आजीवन कारावास पूर्णतः अपर्याप्त प्रतीत हो और अपराध की प्रकृति समाज की सामूहिक चेतना को गहराई से झकझोर देती हो (Bachan Singh v. State of Punjab, 1980)। इस सिद्धांत का उद्देश्य मृत्युदण्ड के मनमाने और असंगत प्रयोग को रोकना है। न्यायालयों ने मृत्युदण्ड निर्धारण के लिए कुछ मानदंड विकसित किए हैं, जिनमें अपराध की प्रकृति, अपराध की परिस्थितियाँ, अपराधी की मानसिक स्थिति, पीड़ित पर पड़े प्रभाव तथा समाज पर अपराध के व्यापक प्रभाव को सम्मिलित किया गया है (Machhi Singh v. State of Punjab, 1983)। इन मानदंडों का उद्देश्य न्यायालय को यह निर्णय लेने में सहायता प्रदान करना है कि कौन सा मामला वास्तव में मृत्युदण्ड के योग्य है। इस प्रक्रिया में न्यायिक विवेक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। प्रत्येक मामला अपने तथ्यों और परिस्थितियों में भिन्न होता है, इसलिए न्यायालय को दण्ड निर्धारण में सावधानी, संतुलन और संवैधानिक मूल्यों का पालन करना आवश्यक होता है। इसी कारण न्यायिक दृष्टिकोण मृत्युदण्ड के संदर्भ में अत्यंत सतर्क और सीमित दृष्टि अपनाता है।

VIII. निवारण सिद्धांत के संदर्भ में मृत्युदण्ड का विश्लेषण

सैद्धांतिक रूप से मृत्युदण्ड को अत्यंत कठोर दण्ड होने के कारण एक प्रभावी निवारक माना जाता है। यह धारणा इस विचार पर आधारित है कि मृत्यु का भय व्यक्ति को गंभीर अपराध करने से रोक सकता है। तथापि, व्यवहार में मृत्युदण्ड की निवारक प्रभावशीलता अनेक कारकों से प्रभावित होती है। भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली में न्यायिक प्रक्रिया अत्यंत लंबी और जटिल है, जिसके कारण दण्ड के निष्पादन में वर्षों का विलंब हो जाता है। अपीलों, पुनर्विचार याचिकाओं और दया याचिकाओं की प्रक्रिया दण्ड की शीघ्रता को गंभीर रूप से प्रभावित करती है, जिससे निवारण सिद्धांत का एक प्रमुख तत्व कमजोर पड़ जाता है (Law Commission of India, 2015)। इसके अतिरिक्त, समान प्रकृति के अपराधों में दण्ड निर्धारण की असमानता भी एक गंभीर समस्या है। कुछ मामलों में अत्यंत जघन्य अपराधों के बावजूद मृत्युदण्ड नहीं दिया गया, जबकि कुछ अन्य मामलों में तुलनात्मक रूप से कम गंभीर परिस्थितियों में मृत्युदण्ड दिया गया। यह असमानता दण्ड व्यवस्था की निष्पक्षता पर प्रश्नचिह्न लगाती है और मृत्युदण्ड की निवारक क्षमता को सीमित कर देती है। उपलब्ध विधिक साहित्य और न्यायिक उदाहरण यह संकेत देते हैं कि मृत्युदण्ड के अस्तित्व के बावजूद गंभीर अपराधों में कोई उल्लेखनीय और स्थायी कमी नहीं आई है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि निवारण सिद्धांत के उद्देश्यों की पूर्ति केवल दण्ड की कठोरता से नहीं, बल्कि दण्ड की निश्चितता, शीघ्रता और समान अनुप्रयोग से होती है।

IX. अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मृत्युदण्ड के उन्मूलन की प्रवृत्ति निरंतर सशक्त होती जा रही है। विश्व के अनेक देशों ने मृत्युदण्ड को समाप्त कर दिया है और इसे मानवाधिकारों, विशेष रूप से जीवन के अधिकार और मानवीय गरिमा, के प्रतिकूल माना है। अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार दस्तावेज जीवन के अधिकार को एक मूलभूत और अविच्छेद्य अधिकार के रूप में मान्यता देते हैं, जिसे किसी भी परिस्थिति में छीना नहीं जाना चाहिए (ICCPR, 1966)। तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो जिन देशों ने मृत्युदण्ड को समाप्त किया है, वहाँ अपराध दर में कोई उल्लेखनीय वृद्धि नहीं देखी गई है। इससे यह तर्क और अधिक सुदृढ़ होता है कि मृत्युदण्ड अपराध रोकने का एकमात्र या अनिवार्य साधन नहीं है (Hood, 2002)। भारत की स्थिति अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य में विशिष्ट है, क्योंकि यहाँ मृत्युदण्ड को पूर्णतः समाप्त नहीं किया गया है, बल्कि उसे अत्यंत सीमित परिस्थितियों तक सीमित रखा गया है। भारत एक संतुलित दृष्टिकोण अपनाने का प्रयास करता है, जिसमें सामाजिक सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था और मानवाधिकारों के बीच संतुलन बनाए रखने का प्रयास किया जाता है। यह तुलनात्मक अध्ययन यह दर्शाता है कि भारत की दण्ड नीति न तो पूर्ण उन्मूलनवादी है और न ही पूर्णतः कठोर, बल्कि यह संवैधानिक मूल्यों और सामाजिक आवश्यकताओं के बीच संतुलन साधने का प्रयास करती है।

X. निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के समग्र विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि निवारण सिद्धांत भारतीय दण्ड व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण सैद्धांतिक आधार अवश्य है, किंतु उसका प्रभाव केवल दण्ड की कठोरता तक सीमित नहीं किया जा सकता। निवारण सिद्धांत की वास्तविक प्रभावशीलता दण्ड की निश्चितता, शीघ्रता तथा समान अनुप्रयोग पर निर्भर करती है। इस संदर्भ में यह निष्कर्ष निकलता है कि मृत्युदण्ड, जो दण्ड का सर्वाधिक कठोर रूप है, अपने आप में अपराधों की रोकथाम का पूर्ण एवं प्रभावी समाधान प्रस्तुत नहीं करता। अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ है कि भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली में मृत्युदण्ड का प्रयोग विधायी और न्यायिक स्तर पर अत्यंत सीमित कर दिया गया है। न्यायपालिका द्वारा विकसित दुर्लभतम से दुर्लभ सिद्धांत इस बात का संकेत देता है कि मृत्युदण्ड को सामान्य दण्ड नहीं, बल्कि अपवादस्वरूप उपाय के रूप में देखा जाता है। यह दृष्टिकोण इस तथ्य को स्वीकार करता है कि दण्ड की कठोरता के साथ-साथ मानवीय गरिमा, जीवन का अधिकार और न्यायिक त्रुटियों की संभावना जैसे तत्वों पर भी समान रूप से विचार किया जाना आवश्यक है। निवारण सिद्धांत के संदर्भ में मृत्युदण्ड का विश्लेषण यह दर्शाता है कि न्यायिक प्रक्रिया में अत्यधिक विलंब, अपीलों और दया याचिकाओं की जटिल व्यवस्था तथा दण्ड निर्धारण में असमानता जैसे कारक मृत्युदण्ड की निवारक क्षमता को गंभीर रूप से कमजोर कर देते हैं। यदि दण्ड वर्षों बाद निष्पादित होता है या उसके अनुप्रयोग में अनिश्चितता बनी रहती है, तो दण्ड का भय अपराधी के मन में प्रभावी रूप से स्थापित नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप, निवारण सिद्धांत के उद्देश्य व्यावहारिक स्तर पर पूर्णतः साकार नहीं हो पाते। अंतरराष्ट्रीय अनुभव और मानवाधिकार विमर्श भी इस निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं कि मृत्युदण्ड और अपराध दर में कमी के बीच कोई प्रत्यक्ष और सार्वभौमिक संबंध स्थापित नहीं किया जा सका है। अनेक देशों द्वारा मृत्युदण्ड के उन्मूलन के पश्चात भी अपराध दर में उल्लेखनीय वृद्धि न होना इस धारणा को और अधिक बल देता है कि अपराध नियंत्रण के लिए वैकल्पिक दण्ड व्यवस्थाएँ और सुधारात्मक उपाय अधिक प्रभावी हो सकते हैं। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली में मृत्युदण्ड की निवारक भूमिका सीमित है और इसे अपराध नियंत्रण का सर्वश्रेष्ठ साधन नहीं माना जा सकता। दण्ड नीति का उद्देश्य केवल प्रतिशोध नहीं, बल्कि न्याय, सामाजिक सुरक्षा और मानवाधिकारों के बीच संतुलन स्थापित करना होना चाहिए। भविष्य में दण्ड व्यवस्था को अधिक प्रभावी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि दण्ड की निश्चितता और शीघ्रता पर विशेष बल दिया जाए, साथ ही सुधारात्मक और पुनर्वासात्मक उपायों को भी समान महत्व प्रदान किया

जाए। इसी संतुलित दृष्टिकोण के माध्यम से निवारण सिद्धांत के उद्देश्यों की वास्तविक और सार्थक पूर्ति संभव हो सकती है।

REFERENCES

1. Beccaria, C. (1764/1986). *On crimes and punishments* (D. Young, Trans.). Hackett Publishing Company.
2. Bentham, J. (1789/1996). *An introduction to the principles of morals and legislation*. Oxford University Press.
3. Gaur, K. D. (2022). *Textbook on Indian Penal Code* (7th ed.). Universal Law Publishing.
4. Hood, R. (2002). *The death penalty: A worldwide perspective* (3rd ed.). Oxford University Press.
5. Paranjape, N. V. (2019). *Criminology, penology and victimology* (18th ed.). Central Law Publications.
6. Law Commission of India. (2015). *The death penalty* (262nd Report). Government of India.
7. Law Commission of India. (2003). *Consultation paper on mode of execution of death sentence and incidental matters*. Government of India.
8. Bachan Singh v. State of Punjab, (1980) 2 SCC 684.
9. Machhi Singh v. State of Punjab, (1983) 3 SCC 470.
10. Jagmohan Singh v. State of Uttar Pradesh, (1973) 1 SCC 20.
11. Shatrughan Chauhan v. Union of India, (2014) 3 SCC 1.
12. Kehar Singh v. Union of India, (1989) 1 SCC 204.
13. International Covenant on Civil and Political Rights. (1966). United Nations.
14. United Nations General Assembly. (1989). *Second optional protocol to the ICCPR, aiming at the abolition of the death penalty*.
15. Amnesty International. (2023). *Global report on death sentences and executions*. Amnesty International Ltd.
16. Bedau, H. A. (1982). The case against the death penalty. *American Journal of Public Health*, 72(9), 986–990.
17. Radelet, M. L., & Akers, R. L. (1996). Deterrence and the death penalty: The views of the experts. *Journal of Criminal Law and Criminology*, 87(1), 1–16.
18. Sunstein, C. R., & Vermeule, A. (2005). Is capital punishment morally required? *Stanford Law Review*, 58(3), 703–750.